

सूचना का अधिकार (Right to Information) Part 4

सूचना का अधिकार लागू होने से पहले भारत और विश्व परिदृश्य-

ब्रिटेन की दुनिया में शासकीय गोपनीय कानून बना था। जब ब्रिटेन में ऐसा कानून लाया जा रहा हो तो भारत का उसे रखने का कोई कारण नहीं था। उसी वर्ष भारत में भी 'शासकीय गोपनीयता का कानून', 1889 लागू कर दिया गया। कालांतर में पत्रकारिता पर अंकुश लगाने के लिए 1904 में उस कानून में संशोधन करके कुछ प्रावधानों को और कड़ा कर दिया गया। इसके तहत समस्त अपराधों को संज्ञेय एवं गैर-जमानतीय बना दिया गया। बाद में ब्रिटेन तथा भारत में इसके कानून में कई परिवर्तन हुए। अंततः भारत में नया कानून शासकीय गोपनीयता अधिनियम, 1923' बना। वह कानून आज भी देश में लागू है, भले ही सूचना के अधिकार ने उसे अप्रासंगिक कर दिया हो। सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 की धारा 22 में स्पष्ट लिखा गया है कि इस अधिनियम के उपलब्ध, शासकीय गोपनीयता अधिनियम, 1923 और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम से अन्य किसी विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाली किसी लिखित में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे।

शासकीय गोपनीयता अधिनियम 1923 में 'गोपनीयता' की कोई परिभाषा नहीं दी गयी है। इसलिए काला कानून की संज्ञा दी जा रही है। यह सरकार पर निर्भर है कि वह किसी बात को गुप्त करार दे। वह कानून किसी भी सामान्य सरकारी दस्तावेज को 'गोपनीय' करार देकर किसी भी व्यक्ति को जेल की हवा खिलाने के लिए पर्याप्त है। इस रूप में, इस कानून ने कार्यपालिका को असीमित, अपरिभाषित पर निरंकुश अधिकार दे रखा है। हालांकि इसमें न्यायालय यह तय कर सकता है कि कोई बात गोपनीय है अथवा नहीं। फिर भी, अगर कार्यपालिका चाहे तो किसी नागरिक या पत्रकार को इस कानून के सहारे आसानी से प्रताड़ित कर सकती है।

स्वाधीनता के बाद कई महत्वपूर्ण संस्थाओ/आयोगों ने इस कानून को बदलने या इसमें फेरबदल की सिफारिश की। प्रथम प्रेस (छापने का यंत्र) आयोग, 1954 ने भी इस बात को दोहराया। प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग, 1968 के देशमुख अध्ययन दल ने शासकीय गोपनीयता संबंधी प्रावधानों की अतार्किक एवं अनावश्यक प्रावधानों, जिनके कारण सूचनाओं के प्रवाह में बाधा आती है,को हटाने की मांग की। भारतीय विधि आयोग ने 1971 में 'राष्ट्रीय सुरक्षा' पर अपनी रिपोर्ट (विवरण) में शासकीय गोपनीयता कानून 1923 की धारा पाँच का उल्लेख करते हुए सुझाव दिया है कि ऐसे सामान्य प्रकटीकरण पर, जिनसे राज्य-हित प्रभावित नहीं होते हो, मुकदमा चलाने की स्वीकृति नहीं देनी चाहिए। ऐसी ही सिफारिशें भारतीय प्रेस परिषद 1981 ने 'ऑफिशियल (आधिकारिक) सीक्रेसी (गुप्तता) एंड (और) द (यह) प्रेस (छापने का यंत्र)' नामक अपनी रिपोर्ट (विवरण) में किया। द्वातीय प्रेस (छापने का यंत्र) आयोग 1982 ने भी इसे निरस्त करने की मांग की।

इन सिफारिशों के बावजूद अब तक यह कानून कायम है हालांकि सूचना का अधिकार ने इसे अप्रासंगिक बना दिया है। वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में गठित द्वातीय प्रशासनिक सुधार आयोग, 2006 ने तो इस कानून को निरस्त कर देने का सुझाव दिया है। अमेरिका के न्यायाधीश बर्गर ने रोजेनब्लेट बनाम बेयर (1966, 383, यूएस 75, 49-95) नामक वाद में कहा था -"जनता के सुनने का अधिकार उसके बोलने के अधिकार में अंतर्निहित है। आम नागरिकों के लिए सूचना पाने का अधिकार सरकार या किसी प्रसारण लाइसेंसधारी (आधिकारिक पत्र) या किसी व्यक्ति के किसी विषय पर अपने विचारों को प्रसारित करने के अधिकार से ज्यादा महत्वपूर्ण है।"

हेराल्ड जे. लास्की के अनुसार-"जिन्हें भरोसेमंद और वास्तविक सूचनाएँ नहीं मिल पाती, उनकी स्वतंत्रता खतरे में है। आज नहीं तो कल उनका नष्ट होना स्वाभाविक है। सत्य किसी भी राष्ट्र की मुख्य धरोहर है और जो उसे दबाने या

Visit examrace.com for free study material, doorsteptutor.com for questions with detailed explanations, and "Examrace" YouTube channel for free videos lectures

छिपाने की कोशिश करते हैं अथवा जो उसके उजागर होने से भयभीत रहते हैं, बर्बाद होना ही उनकी नियति है।”